ईश्वर एवं आत्मा

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय,

सभी आस्तिक दर्शन किसी न किसी रूप में ईश्वर एवं आत्मा के अस्तित्त्व में विश्वास करते हैं, क्योंकि आत्मा के अस्तित्त्व को माने बिना कर्म और पुनर्जन्म की व्याख्या ही नहीं की जा सकती। आत्मा ही एक ऐसा शाश्वत तत्त्व है जिसके आधार पर मानव अपने अस्तित्त्व को सिद्ध करता है। आत्मा दो प्रकार की है, एक जीवात्मा दूसरी परमात्मा। परमात्मा या ईश्वर सर्वज्ञ है, और एक है। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न–भिन्न व्यापक और नित्य है।

परमतत्त्व अंतिम तत्त्व है, सर्वाधार है, सभी वस्तुओं का मूलस्थान है। उसी को मूलतत्त्व कहा जा सकता है, जिससे इस जगत् की उत्पत्ति हुयी है, जो सभी वस्तुओं की सत्ता का आधार है और जिसमें अन्ततः इन सभी वस्तुओं का लय हो जाता है। जगत् का आदि और अन्त ईश्वर को माना गया है। अतः ईश्वर ही परमतत्त्व है। इसे ही आत्मतत्त्व भी कहते हैं। ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं– मूर्त्त और अमूर्त्त, मर्त्य और अमृत, स्थित और चर तथा सत् और त्यत्। ब्रह्म के विषय में सविशेष श्रुतियां और निर्विशेष श्रुतियां दोनों उपलब्ध हैं। ब्रह्म को सविशेष सगुण भी कहा गया है और निर्विशेष निर्गुण भी। सगुण ब्रह्म को 'अपर' ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म को पर ब्रह्म कहा गया है। अपर रूप में ब्रह्म सविशेष, सगुण, सप्रपंच, सविकल्प और सोपाधिक है तथा पर रूप में ब्रह्म निर्विशेष, निर्गुण निष्प्रपञ्च, निर्विकल्पक और निरूपाधिक है। अपर ब्रह्म की संज्ञा ईश्वर भी है जो समस्त विश्व का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता और नियन्ता है। ये ही सर्वज्ञ और सर्वअन्तर्यामी हैं। ये ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं, क्योंकि सभी प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के स्थान ये ही है। स्वरूप लक्षण वस्तु के तात्विक स्वरूप को प्रगट करता है। सगुण ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है––'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' और विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। ब्रह्मपरम सत्य है, विशुद्ध ज्ञान है, अनन्त है, अखण्ड आनन्द है। यह ब्रह्म का स्वरूप है। ब्रह्म सत् चित् आनन्द है, शान्त और शिव है।

ब्रह्म का निर्गुण रूप भी प्राप्त होता है। निर्गुण ब्रह्म के निर्वचन में निषेधात्मक पदों का प्रयोग किया गया है। निर्गुण होने से ब्रह्म सभी सांसारिक धर्मों से परे है। अतः लौकिक विशेषणों का प्रयोग ब्रह्म के लिये नहीं किया जा सकता। अतीन्द्रिय, निर्विकल्प, निरुपाधि और अनिर्वचनीय ब्रह्म, इन्द्रिय, बुद्धि विकल्प और वाणी द्वारा ग्राह्य नहीं है। ब्रह्म न मोटा है, न पतला है, न छोटा है, न बड़ा है, न लाल है, न द्रव है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकाश है, न संग है, न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न कान है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, उसमें न अन्दर है, न बाहर है, अतः ब्रह्म अज्ञेय नहीं है। निर्विशेष और अनिर्वचनीय ब्रह्म का वर्णन यदि करना ही है तो निषेध मुख से करना चाहिये। जीवात्मा वास्तव में न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। यह जब जिस शरीर को ग्रहण करता है, उस समय उससे संयुक्त होकर वैसा ही बन जाता है। जो जीवात्मा आज स्त्री है, वही दूसरे जन्म में पुरुष हो सकता है, जो पुरुष है, वही स्त्री हो सकता है। भाव यह है कि स्त्री, पुरुष और नपुंसक आदि भेद शरीर को लेकर हैं, जीवात्मा को लेकर नहीं। जीवात्मा सर्वभेदशून्य और सारी उपाधियों से रहित है।

ईश्वर को जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कारण कहा गया है। वे समस्त देवों तथा लोकों के उत्पत्ति स्थान हैं। स्थूल, सूक्ष्म, अव्यक्त, दो पैरों वाले और चार पैरों वाले सम्पूर्ण जीव समुदाय उन्हीं की कृपा पर आश्रित हैं। वे ही परमेश्वर स्थितिकाल में समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करते हैं तथा वे ही सम्पूर्ण जगत् के अधिपति और समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से छिपे हुए है। ईश्वर के लिये विश्वकर्मा, महात्मा, लोगों के हृदय में निवास करने वाला, बुद्धि और मन से ध्यान में लाया हुआ तथा रहस्य को जानने वाला कहा गया है। इस प्रकार विश्वस्रष्टा के रूप में ब्रह्म का वर्णन किया गया है।

आत्मा को अमर, नित्य तथा अपरिणामी कहा गया है। आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, यह न ही किसी अन्य कारण से ही उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ अर्थान्तररूप से बना है। यह अजन्मा नित्य–शाश्वत और पुरातन है तथा शरीर के नष्ट होने पर भी नहीं नष्ट होता। गीता में भी कहा गया है कि यह आत्मा किसी काल में न तो जन्मता है और न मरता है तथा यह न उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और

पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता है। यदि मारने वाला आत्मा को मारने का विचार करता है और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ समझता है तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते, क्योंकि यह न तो मरता है और न मारा जाता है। गीता भी इसी बात को कहती है कि जो इस आत्मा को मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है। आत्मा की अनुभूति कैसे करें यह एक प्रश्न है। आत्मा की अनुभूति अनुभव जन्य है। श्रमण परम्परा में केवलज्ञान हो जाने के बाद जीव ईश्वर बन जाता है। आत्मा अपने मूल स्वरूप में स्थिर हो जाती है। यह अवस्था परम आनन्द की अवस्था है। क्योंकि इस अवस्था में आत्मा पर कर्मों का आवरण नहीं रहता है।